International Journal of Applied Research 2018; 4(6): 85-87

International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(6): 85-87
www.allresearchjournal.com
Received: 01-04-2018
Accepted: 03-05-2018

Swasti Sharma
Research Scholar, Department of Sanskrit University of Delhi New Delhi, India

Correspondence
Swasti Sharma
Research Scholar, Department of Sanskrit University of Delhi New Delhi, India

अद्वैतवेदान्त में माया का स्वरूप

Swasti Sharma

प्रस्तावना

भारतीय दर्शनों में सर्वोच्च स्थान अद्वैतवेदान्तदर्शन को प्राप्त है। अद्वैतवाद से तात्पर्य उस विचारधारा से है जो कि मात्र किसी एक तत्त्व को ही अन्तिम रूप से सत्य स्वीकारती है तथा शेष अन्य को उससे उत्पन्न, उसका विकार अथवा उसका आभास स्वीकार करती है। भारतीय दर्शन में अद्वैतवाद के सम्बन्ध में दो बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं- प्रथम परमतत्त्व एक और आध्यात्मिक है और द्वितीय वह पारमार्थिक है। भारतीय दर्शन की वैदिक और अवैदिक दोनों परम्पराओं में अद्वैतवाद का विभिन्न रूपों में प्रतिपादन क्या गया है। अद्वैतवेदान्त में विवेचित माया के स्वरूप को इस शोधपत्र में प्रस्तुत किया जा रहा है।

माया

> अव्यक्तनाम्नी परमेश्वरशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
> कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।।[1]

जो अव्यक्त नामवाली त्रिगुणात्मिका अनादि अविद्या परमेश्वर की परा शक्ति है, वही माया है, जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। बुद्धिमान जन कार्य से ही इसका अनुमान करते हैं।

> सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
> साङ्गाप्यनङ्गा ह्युभयात्मिका नो महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा।।[2]

वह न सत् है, न असत् है और न सदसत् उभयरूप है। न भिन्न है, न अभिन्न है और न भिन्नाभिन्न उभयरूप है। न अङ्गसहित है, न अङ्गरहित है और न साङ्गानाङ्ग उभयात्मिका ही है किन्तु अत्यन्त अद्भुत और अनिर्वचनीयरूपा अर्थात् जिसको बतलाया ना जा सके, ऐसी है।

> शुद्धाद्वयब्रह्मविबोधनाश्या, सर्पभ्रमो रज्जुविवेकतो यथा।
> रजस्तम:सत्त्वमिति प्रसिद्धा, गुणास्तदीयाः प्रथितै: स्वकार्यैः।।[3]

---

[1] विवेक-चूडामणि, 108

[2] विवेक-चूडामणि, 109

[3] विवेक-चूडामणि, 110

रज्जु के ज्ञान से सर्प-भ्रम के समान वह अद्वितीय शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान से ही नष्ट होने वाली है। अपने-अपने प्रसिद्ध कार्यों के कारण उसके तीन गुण सत्व, रजस् और तमस् ये प्रसिद्ध हैं।अद्वैतवेदान्त में माया का स्वरूप

माया का शाब्दिक अर्थ है– जो सत् नहीं है। जो पारमारर्थिक रूप से सत् नहीं है, वह सब कुछ वेदान्त की माया है। माया एवम् अविद्या को समानार्थक ही स्वीकार किया गया है, जबकि कुछ विद्वान् माया को समष्टिरूप एवम् अविद्या को व्यष्टिरूप में जीव की उपाधि के रूप में स्वीकार करते हैं। माया की विवेचना करने से पहले शङ्कराचार्य ने अध्यास का विवेचन करते हुए अध्यासभाष्य लिखा है जिससे माया के स्वरूप को स्पष्ट किया जा सके। शंकराचार्य ने अध्यास की विषद् विवेचना की है जिसका संक्षेप में यहाँ उसके मूल रूप का उल्लेख आवश्यक है। अध्यास किसी वस्तु का किसी अन्य वस्तु में आभास है। शङ्कराचार्य ने तीन प्रकार की सत्ताओं को स्वीकार किया है- स्वप्न, जाग्रत् और पारमार्थिक। स्वाप्निक अनुभव का जाग्रत् में तथा जाग्रत् अनुभव का पारमार्थिक अनुभूति में बाध हो जाता है। किसी वस्तु के सत्य होने के लिए उसकी अनुभूति आवश्यक है। जिसका अनुभव नहीं होता वह सत्य नहीं हो सकता। जैसे वन्ध्यापुत्र, आकाशकुसुम आदि हमारे अनुभव में कभी भी नहीं आ सकते हैं। इस अनुभूति में कोई न कोई विषय अवश्य होना चाहिए।

शङ्कराचार्य अनिर्वचनीयख्याति को स्वीकार करते हैं और उसी के आधार पर माया को अनिर्वचनीय कहा गया है। माया अनिर्वचनीय और अपरिभाष्य है। यह न तो सत् है और न ही असत् है। यह सत् नहीं है क्योंकि इसका अस्तित्व ब्रह्म से पृथक् नहीं है। यह असत् भी नहीं है क्योंकि यह द्रव्यमान जगत् को प्रत्यारोपित करती है। यह वास्तविक नहीं है क्योंकि ज्ञान होने पर यह तिरोहित हो जाती है। यह अवास्तविक भी नहीं है क्योंकि जब तक बनी रहती है तब तक सत् है। इसमें इतनी शक्ति तो है कि यह जगत् को जन्म दे सके परन्तु इतनी शक्ति नहीं कि यह ब्रह्म को प्रतिबन्धित कर सके। अतः यह सत् और असत् दोनों ही नहीं है अपितु अनिर्वचनीय है।

माया की शक्तियाँ

माया की दो शक्तियाँ हैं– आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति। आवरणशक्ति से वह ब्रह्म को आवृत्त लेती है और विक्षेपशक्ति के रूप में इस जगत् की प्रतीति कराती है। माया अनादि है क्योंकि यह देश और काल के परे है। यह भावरूप है किन्तु यथार्थ नहीं है। इसे भावरूप इसलिए कहा गया है ताकि इस बात को रेखाङ्कित किया जा सके कि माया मात्र अभाव नहीं है। माया के वस्तुत: दो पक्ष हैं– नकारात्मक एवं सकारात्मक। नकारात्मक पक्ष में यह ब्रह्म को आवृत्त कर लेती है जिसके कारण उसका वास्तविक स्वरूप आवृत्त हो जाता है तथा अपने सकारात्मक पक्ष में यह ब्रह्म की विक्षेपशक्ति है। ब्रह्म पर अनेकान्तिक जगत् का अध्यारोपण होता है जिससे इस जगत् की प्रतीति होती है।

वेदान्तसार के अन्तर्गत वस्तु पर अवस्तु के आरोप को अध्यारोप के रूप में स्पष्ट करते हुए वस्तु की आत्मन् एवम् अवस्तु की अनिर्वचनीय के रूप में व्याख्या की गयी है। अज्ञान को शास्त्रों में कहीं पर “माया” तथा कहीं पर ”अविद्या” कहा गया है। इसलिए सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर अज्ञान की अनिर्वचनीयता ही सिद्ध होती है।

विद्वानों द्वारा माया की व्याख्या के लिए कुछ दार्शनिक पारिभाषिक शब्दों का आश्रय ले कर माया को विवेचित करने का प्रयास किया गया। जो कि आगे प्रसतुत हैं–

माया की त्रिगुणात्मकता– अज्ञान त्रिगुणात्मक है, जिससे उत्पन्न होने वाले तेज, जल और अन्न में क्रमश: लोहित, शुक्ल और कृष्ण गुण होते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है–“यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वम्” अर्थात् जब कार्य लोहित, शुक्ल और कृष्ण इन तीनों गुणों वाला है तो उसका कारणभूत अव्याकृत अज्ञान भी त्रिगुणात्मक ही होगा।

श्वेताश्वरोपनिषद् में भी इन तीनों गुणों को अज्ञान या माया का स्वरूप बताते हुए कहा गया है-

> अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां वही: प्रजा सृजमानां सरूपा:।
> अज्जोहोको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्त भोगाय जोऽन्य:॥[4]

परवर्ती काल में लोहित को रजस्, शुक्ल को सत्व और कृष्ण को तमस् कहा जाने लगा। अतः त्रिगुणात्मक का अर्थ “लोहितशुक्लकृष्णात्मक” अथवा “सत्वरजस्तमोगुणात्मक” किया जाये,दोनों का तात्पर्य समान ही है। त्रिगुणात्मक कहने से गुण और गुणी के अभेद का बोध होता है। ये तीन गुण ही इनके तीन रंग है।

माया को परमेश्वर के रूप में कहा गया है, जो इस प्रकार है–

> ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् दैवात्मशक्तिं स्वगुणौर्निगुढाम्।
> य: कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येक:॥[5]

जब किसी निर्णय पर अनुमान के द्वारा न पहुँच सके, तब उन सबके ध्यान में स्थित होने पर उन्हें परमात्मा की महिमा का अनुभव हुआ। उन्होंने परब्रह्म की स्वरूपभूत दिव्य शक्ति का साक्षात्कार किया जो अपने ही गुणों से अर्थात् सत्व, रजस् और तमस् से ढकी है अर्थात् जो त्रिगुणमयी प्रतीत होती है किन्तु वास्तव में तीनों गुणों से परे है। इस प्रकार माया को त्रिगुणात्मिका के रूप में विवेचना की गयी है।

इसी प्रकार गीता में भी माया को गुणमयी कहा गया है, जो इस प्रकार है-

> दैवी होषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
> मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।[6]

माया का ज्ञानविरोधित्व– अज्ञान ज्ञान का विरोधी है। ज्ञान के द्वारा निर्वत्य होना ही अज्ञान का लक्षण है। अज्ञान के इस लक्षण में अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असम्भव आदि दोष नहीं है। ब्रह्मात्मैकत्व विज्ञान से निवृत्त होने वाले संसाररूप प्रपञ्च अज्ञानजन्य होने के कारण ज्ञान से अभिन्न है।

माया का भावरूपत्व– अद्वैतवेदान्त के अनुसार ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होती है। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब अज्ञान भावरूप हो लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिये कि अज्ञान परमार्थ सत् है क्योंकि तब तो इसकी निवृत्ति ही नहीं हो सकेगी। अज्ञान को भाव कहने का अभिप्राय यह कि उसको अभाव से विलक्षण बताना है। जब तक आत्मसाक्षात्कार नहीं होता, तभी तक अज्ञान भावरूप है। आत्मसाक्षात्कार होने पर अज्ञान नष्ट हो जाता है।

इसको पञ्चदशी में इस प्रकार कहा गया है-

> तुच्छानिर्वचनीया च वास्तवी चेत्यसौ त्रिध।
> ज्ञेया माया त्रिभिर्बोधै: श्रोतयोक्तिक लौकिकै:॥[7]

---

[4] श्वेताश्वरोपनिषद्, 4.9

[5] श्वेताश्वरोपनिषद्, 1.3

[6] गीता, 7.14

माया का यत्किञ्चित्व- अज्ञान के सद्रूप का या असद्रूप से निरूपण करना असम्भव है। अतः उसको 'यात्किञ्चित्' ही कहा गया है। इसी को बृहदारण्यकोपनिषद् में इस प्रकार कहा गया है-

> अविद्याया अविद्यात्वमिदमेव तु लक्षणम्।
> यत्प्रमाणासहिष्णुत्वमन्यथा वस्तु सा भवेत्॥[8]

अज्ञेय होना ही अविद्या का लक्षण है। प्रमाणों की कसौटी पर इसको नहीं कसा जा सकत है, अत एव अवस्तु है।

> अज्ञानं ज्ञातुमिच्छेद् यो मानेनात्यन्तमूढधी:।
> स तु नूनं तम: पश्येद् दीपेनोत्तमतेजसा॥[9]

अर्थात् अज्ञान को प्रमाण के द्वारा जानने की इच्छा तो वैसी ही है, जैसे दीपक से अन्धकार को देखने की इच्छा है।

युक्तियों के आधार पर माया के स्वरूप का निर्धारण करते हुए वेदान्तियों ने माया के पाँच लक्षण किये हैं तथा सभी के मत से माया का अर्थ मिथ्या है।

- पद्मपाद ने कहा कि माया सदसत् से विलक्षण है। माया सत् नहीं जैसे आत्मा सत् है। माया असत् नहीं है जैसे वन्ध्यापुत्र असत् है क्योंकि माया का अनुभव होता है। अत: माया सत् और असत् से विलक्षण है जिसकी पारिभाषिक संज्ञा अनिर्वचनीयत्व है।
- आनन्दबोध ने कहा कि माया सद् से भिन्न है। आत्मा सत् है। आत्मा से भिन्न जो कुछ भी है वह माया है। द्रष्टा आत्मा से भिन्न जो दृश्य है, वह माया है।
- प्रकाशात्मा ने कहा है कि माया वह है जो ज्ञान से निवर्त्य है। स्वाप्निक जगत् जाग्रत् से निवर्त्य है। अत: स्वप्न माया है और यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म से निवर्त्य है। अतः यह सम्पूर्ण जगत् माया है।
- प्रकाशात्मा ने माया का एक और लक्षण बताते हुए कहा है कि उपाधियों के रहते जो त्रैकालिक निषेध का प्रतियोगी है वह माया है।
- चित्सुखाचार्य माया का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि स्वाश्रयनिष्ठ अत्यन्ताभाव का जो प्रतियोगी है वह माया है।

अद्वैतवेदान्त में माया को त्रिगुणात्मिका कहा गया है। माया को ही शङ्कर, मण्डन, पद्मपाद, प्रकाशात्मा आदि वेदान्ती अविद्या कहते हैं। उनके मत से माया और अविद्या में अभेद है। दोनों एक ही हैं। कुछ वेदान्तियों ने दोनों में भेद किया है। विद्यारण्य ने कहा कि विशुद्ध सत्वगुणप्रधान माया है और मलिनसत्वगुण प्रधान अविद्या है। मलिनसत्व का अभिप्राय उस सत्वगुण से है जो रजोगुण तथा तमोगुण से तिरस्कृत रहता है। कुछ विद्वानों के मत में विक्षेपशक्ति की प्रधानता है जिसमें वह माया है और आवरण शक्ति की प्रधानता है जिसमें वह अविद्या है। इस प्रकार वेदान्त में माया के स्वरूप का वर्णित किया गया है।

वेदान्त के अनुसार ब्रह्म बिलकुल शान्त एवं निष्क्रिय है। जब ब्रह्म अविद्या से उपहित हो जाता है, तब वह ईश्वर कहलाता है और तभी उसमें कर्तृत्व आता है। वास्तविक कर्तृत्व अविद्या का है। ईश्वर जब तक अविद्या से अनुपहित रहता है, तब तक उसमें कोई कर्तृत्व नहीं रहता। अर्थात् ईश्वर का ईश्वरत्व, सर्वज्ञत्व और सर्वशक्तिमत्व आदि उसकी अविद्या उपाधिजन्य परिमितता पर अवलम्बित है । परमार्थः जब विद्या के द्वारा आत्मा में से सभी उपाधियाँ निरस्त हो जाती हैं तब उसके लिए सर्वज्ञत्व आदि व्यवहार उपयुक्त नहीं रहते। तो शङ्कर के अनुसार ईश्वर में जो कुछ कर्तृत्व है, वह अविद्या के कारण है। जब अन्त में माया अर्थात् अविद्या का आवरण हटने से ज्ञानोदय होता है और ब्रह्म का बोध होता है, तब जीव को आत्मसाक्षात्कार होता है और उसे जीवब्रह्मैक्य की अनुभूति होती है।

उपसंहार

अद्वैतवेदान्त माया को अनिर्वचनीय मानता है। माया न सत् है न असत् अपितु सद्सद्रिर्वचनीय है। व्यावहारिकदृष्टि से माया को सत् कहा गया है क्योंकि उसी से ही इस जगत् का अनुभव होता है। पारमार्थिक दृष्टि से माया को असत् कहा गया है क्योंकि इस दृष्टि के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व ही नहीं है। इस प्रकार से एक दृष्टि से सत् तथा दूसरी दृष्टि से असत् होने के कारण माया को सदसदनिर्वचनीय कहा गया है। इसका सत् या असत् किसी भी रूप में निर्वचन करना सम्भव नहीं है। माया की दो शक्तियाँ स्वीकार की जाती हैं-आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति। माया को समष्टिरूप में अज्ञानरूप ही माना गया है जबकि व्यष्टिरूप में ब्रह्मतत्तव के स्वरूप गोपन कर लेती है तथा व्यष्टि रूप में अविद्या आत्मत्व का स्वरूप गोपन कर लेती है। इस दर्शन का अन्तिम प्रयोजन माया के आवरण से अनावृत्त होकर ब्रह्म के बोध से मनुष्य की मुक्ति है। अत एव अद्वैतवेदान्त की माया को विवेचित किया गया।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. अञ्जना. शंकर का अद्वैत दर्शन. परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2006.
2. आंगिरस, रमाकान्त. शांकर वेदान्त: एक अनुशीलन. नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल, 1982.
3. आचार्य रामाद्वय. वेदान्तकौमुदी. संपा. चतुर्वेदी, राधेश्याम. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शोधप्रकाशन, काशी,1973
4. उपाध्याय, बलदेव. भारतीय दर्शन. चौखम्बा ओरिएंटल प्रकाशन, वाराणसी, 1979.
5. छान्दोग्योपनिषद्. गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तर प्रदेश.
6. तारादत्त. शंकराद्वैत के प्रमुख सिद्धान्तों का पारम्परिक विश्लेषण. नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 2002.
7. महापात्र, प्रभातरञ्जन. अद्वैतवेदान्ते परमतत्त्वम्. उत्कलसंस्कृतगवेषणासमाज, पुरी, 2003.
8. विद्यारण्य. पञ्चदशी. संपा. ब्रह्मचारी लक्ष्मणचैतन्य. श्री धर्मसंघ शिक्षा मण्डल, दूर्वाकुण्ड, वाराणसी.
9. शङ्कराचार्य, विवेकचूडामणि. गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तर प्रदेश.
10. शर्मा, ऊर्मिला. अद्वैत वेदान्त में तत्त्व और ज्ञान. छन्दस्वती प्रतिष्ठान, वाराणसी, 1978.
11. शर्मा, राममूर्ति. अद्वैत वेदान्त (इतिहास और सिद्धान्त). इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली,1998.
12. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तर प्रदेश.
13. श्वेताश्वेतरोपनिषद्. गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तर प्रदेश.
14. सिंह, कालिप्रसाद. शांकरवेदान्ते तत्त्वमीमांसा. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1982.

---

[7] पञ्चदशी, 6.130

[8] बृहदारण्यकोपनिषद्

[9] बृहदारण्यकोपनिषद्